बनारसीदास

बनाम

सेठ कांशीराम और अन्य

(और संबंधित अपीले)

(एस.जे.इमाम, के. सुब्बा राव, एन, राजगोपाल अयंगर

और जे.आर. मुधोकर, द्वितीय)

परिसीमा- साझेदारी के विघटन की तारीख- भारतीयपरिसीमा अधिनियम, (1908 का 9) कला 106-भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का 9) धारा 43- सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का अधिनियम 5) 0.20, आर.15।

वादी ने अपने भाइयो के खिलाफ मुकदमा दायर किया, जिन्होने पहले एक सयुक्त परिवार का गठन किया था, यह घोषाणा करने के लिए कि चीनी मिल के संबंध में संयुक्त रूप से समाप्त होने के बाद उनके द्वारा बनाई गई साझेदारी 13 मई 1944 को समाप्त हो गई थी। किस तारीख की भाइयो मे से एक ने साझेदारी के विघटन के लिए पहले मुकदमा दायर किया था। पिछला मुकदमा डिफाल्ट के कारण खारिज कर दिया गया था।

वर्तमान मुकदमे में वादी ने प्रतिवादी 1 और 2 से खातो के लिए डिक्रि के साथ-साथ एक रिसीवर की नियुक्ति के लिए भी प्रार्थना की टायल कोटर् ने मुकदमें का फैसला सुनाया, समापन का आदेश दिया ओर एक आयुक्त नियुक्त किया। इसने उन खातो को भी निर्देशित किया जिनके लिए प्रार्थना की गई थी। उच्च न्यायालय के समक्ष कांशीराम, जिन्होने कोई लिखित बयान दाखिल नही किया था और जिनके खिलाफ

टायल कोर्ट में कार्यवाही एकपक्षीय थी, ने तर्क दिया कि मुकदमा परिसीमा द्वारा वर्जित था ओर किसी भी स्थिति में उन्हे जवाब देह नही ठहराया जाना चाहिए। वादी ने तर्क दिया कि यह मुकदमा एक विघटित फर्म की संपति के वितरण के लिए था और इसमें कोई सीमा नही थी। उच्च न्यायालय ने यह देखते हुए एक पक्ष द्वारा जी गई सीमा की दलील पहली बार उसके समक्ष उठाई थी, यह माना कि इस के कारण परिसीमा अधिनियम के 3 में यह परिसीमा की रोक का नोटिस लेने के लिए बाध्य था और मुकदमें को खारिज कर दिया गया। कांशीराम की याचिका पर निर्णय लेने के बाद उच्च न्यायालय ने अन्य प्रतिवादियों की कोई अपीलों के संबंध में परीणामी आदेश पारित किए। अपील पर इस न्यायालय में यह तर्क् दिश गया किपरीसीमा का प्रश्न जो उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के आधार पर भी नही उठाया गया था, तथ्य ओर कानून का एक मिश्रित प्रश्न था ओर इस पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार नही किया जाना चाहिए था। माना गया कि 13 मई, 1944 को दायर विघटन का मुकदमा डिफाल्ट रूप से बर्खास्तगी में समाप्त हो गया था, और इस प्रकार कोई तारीख नही थी।

साझेदारी के विघटन की सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट। 1.5 सिविल प्रक्रिया संहिता न्यायालय द्वारा तय की गई थी साझेदारी को समाप्त करने के लिए साझेदारी अधिनियम की धारा 1.43 द्वारा विचार किए गए नोटिस के रूप में वादी को नही समझा जा सकता है। यहां तक कि इस धारणा पर भी कि वादपत्र के साथ आए समन को साझेदारी के विघटन के लिए नोटिस की तामील कहा जा सकता है, विघटन की तारीख केवल वह तारीख हा सकती है जिस दिन इन सभी तथ्यात्मक प्रश्नों की अंतिम जांच की जानी की सेवा की गई। न्यायालय ने सीमा के प्रश्न मानकर और उस पक्ष के कहने पर जिसने लिखित बयान दायर नही किया था, पहली बार सुनवाई के दौरान इसे उठाने की अनुमति देकर गलती की थी। टायल कार्ट के समक्ष प्रश्न पर मुद्दा।

सिविल अपीलीय क्षेनाधिकारःसिविल अपील संख्या 94 से 97/1960।

15 मार्च, 1956 के इलाहाबाद के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध अपील। 1954 की प्रथम अपील संख्या 172, 364 और 379 में उच्च न्यायालय।

अपीलकर्ता (सी.ए.संख्या 97/60 में) प्रतिवादी संख्या 2 (सी.ए.संख्या 94/60 में) और प्रतिवादी संख्या 1 (सी.ए.संख्या 95 में) के लिए वेद व्यास, आर.के. गर्ग, डी.पी. सिह, शिव शास्त्री और के.के. जैन।

अपीलकर्ता (सी.ए.संख्या 97/60 में) प्रतिवादी संख्या 2 (सी.ए.संख्या 94/60 में) और प्रतिवादी संख्या 1(सी.ए.संख्या 95 में) के लिए रामेश्वर नाथ, एस.एन, एंडली और पी.एल.वोहरा और 96/60।

प्रतिवादी संख्या 1(सी.ए.संख्या 94 और 97/60 में) प्रतिवादी संख्या(60 में से सी.ए.संख्या 95 में)और प्रतिवादी संख्या 4(सी.ए.संख्या में) के लिए के एल गोसाई और सोहन लाल पांधी 96/60

प्रतिवादी संख्या 3 के लिए हरबंस सिंह(सी.ए.में) क्रमांक 94/60।

जे.पी. अग्रवाल प्रतिवादी संख्या 4(सी.ए.संख्या 94/60 में) उतरदाताओ संख्या 3 और 4 (सी.ए.संख्या 95/60 में) उतरदाताओ संख्या 1 और 3 (सी.ए.संख्या 96/60 में) और उतरदातो संख्या के लिए 3 एवं 4 (सी.ए.संख्या 97/60 में)।

17 दिसबंर, 1962 को न्यायालय का फैसला सुनाया गया।

मुधोपुर, जे. ये कला के तहत इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए प्रमाणपत्रों द्वारा अपील है। 133(1)(सी) का 15 मार्च 1956 के अपने निर्णयों से संविधान। प्रासंगित तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैः

वादी कुन्दनलाल और प्रतिवादी 1 से 5 बनारसी दास, कांशी राम, कुन्दन लाल, मुन्नालाल, देवी चंद और शेआप्रसाद भाई है और उन्होने वर्ष 1936 तक एक संयुक्त हिन्दू परिवार का गठन किया। अन्य संपतियों के अलावा परिवार के पास उतर प्रदेश के बिजनौर में एक चीनी मिल भी थी। जिसे "श्यो प्रसाद बनारसी दास चीनी मिल्स" कहा जाता है। परिवार के विघटन के बाद भाइयो ने उक्त चीनी मिल का व्यवसाय संयुक्त हिंदू परिवार के सदस्यो के अजाय साझेदार के रूप में चलाने का निर्णय लिया। साझेदारी इच्छानुसार होनी थी और प्रत्येक भाई को सभी लाभ और हानि को समान रूप से साझा करना था। मिल का प्रबधंन भाइयो में से एक द्वारा किया जाना थाजिसे प्रबंध भागीदार के रूप में नामित किया जाना था और भाइयों के बीच समझौता हुआ, बशर्ते कि वर्ष 1936-37 के लिए, जो सितंबर, 1936 को शुरू हुआ, पहले प्रतिवादी बनारसी दास होगें। जो 1960 की सिविल अपील 94 से 96 में अपीलकर्ता है, को प्रबंध भागीदार होना था। समझौते में प्रावधान था कि बाद के वर्षों के लिए भाइयो द्वारा सर्वसम्मति से नामित व्यक्ति को प्रबंध भागीदार क यप में कार्य करने वाले व्यक्ति को बने रहना चाहिए। वर्ष 1941-44 के लिए, कुन्दनलाल प्रबंध भागीदार थे। 13 मई 1944 को, शेओ प्रसाद प्रतिवादी नंबर 5, अब मृतक, ने कुदनलाल के खिलाफ साझेदारी के विघटन और खातो की वापसी के लिए अधीनस्थ न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, लाहौर की अदालत में मुकदमा दायर किया और अन्य भाइयो के साथ प्रतिवादी के रूप में शामिल हो गए। मुकदमें के प्रतिवादी के रूप में, इस दौरान न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 3 अगस्त 1944 द्वारा, एक श्री पीसी महाजन, वकील को रिसीवर के रूप में नियुक्त किया, लेकिन चूकिं पक्ष आदेश से असंतुष्ट थे, इसलिए मामले को पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय में ले जाया गया, जहां वे सहमत हो गए। पक्षों के बीच समझौते के अनुसरण में उच्च न्यायालय ने 5 अप्रेल 1945 से श्री महाजन के स्थान पर कांशीराम को रिसीवर नियुक्त किया। इस बीच, जिला मजिस्टेट, बिजनौर ने भारत की रक्षा नियमों के तहत मिल पर कब्जा कर

लिया और कुंदनलाल को नियुक्त किया। और उनके बेटे को वर्ष 1944-45 के लिए सुपी सरकार के एजेंट के रूप में मिल में काम करने के लिए नियुक्त किया गया। इस पटटे का नवीनीकरण सरकार द्वारा वर्ष 1945-46 के लिए कर दिया गया। 28 अगस्त, 1956 को देवी चंद को छोडकर, सभी पक्षे ने लाहौर की अदालत में एक आवेदन देकर प्रार्थना की कि रिसीवर को पांच साल की अवधि के लिए बनारसीदास के पक्ष में पटटा निष्पादित करने का आदेश दिया जाए। उल्लेखनीय है कि या आवेदन जिलाधिारी के सुझाव पर किया गया थाः बिजनौर। अधीनस्थ न्यायाधीश ने आवेदन के संदर्भ् में एक आदेश दिया। सितंबर 1946 में बनारसीदास ने मिल पर कब्जा कर लिया। उल्लेखनीय है कि श्ये प्रसाद ने इस बीच रूपये की राशि को पूर्व साझेदारी के बीच बांटने के लिए अदालत किया था। 8,10,000/- (कुल रू. 8,30,000/-मे से) जो रिसीवर के पास पडा थाऔर सुझाव दिया कि कुन्दनलाल और बनारसीदास को मिलने वाली राशि रोक दी जानी चाहिए क्योकि उन्हे हिसाब देना था। तथापि,

2. 8 नवंबर,1947 को, श्यो प्रसाद ने बनारसीदास को रिसीवर के रूप में कार्य करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा के लिए अपने भाइयो के खिलाफ सिविल जज, बिजनौर की अदालत मेें मुकदमा दायर किया। सूट, कैसे कभी 3 मार्च 1948 को बर्खास्त कर दिया गया था। 16 जुलाई 1948 को, शेओ प्रसाद ने अपना 1/6 वां हिस्सा बनारसीदास को हस्तांतरित कर दिया और तब से बनारसीदास को अपने हिस्से के साथ-साथ सम्मान के माले में भी लाभ मिल रहा है।

7 अक्टुबर 1948 को जिस मुकदमें से ये अपीले उठी, वह वादपत्र के पैरा 29 में निर्धारित राहत का दावाकरने वाले अनपे सभी भाइयो के खिलाफ कुंदनलाल द्वारा दायर किया गया था। राहतें इस प्रकार हैः-

"(ए) यह घोषित किया जा सकता है कि पार्टियो के बीच शिव प्रसाद बनारसी

दास शुगर मिल्स, बिलनौर की साझेदारी 13 मई 1944 को समाप्त हो गई थी और यदि अदालत की राय में साझेदारी अभी भी अस्तित्व में है, तो अदालत कृपया मूल्य 5000 रू. इसे विघटित करने की कृपा करे।

(बी) प्रतिवादी 1 और 2 या उनमें से किसी से हिसाब लिया जाए और वादी के पक्ष मे उस राशि के लिए डिक्री पारित की जाएजो संपति और मुनाफे में उसकेहिस्सेके कारण वादी को देय हो और उनके पास बहुत सारा धन है। मूल्स रू. 500 (सी) कि सेठ शिव प्रसाद बनारसी दास शुगर मिल्स।

(सी) बिजनौर के लिए एक पेडेटलाइट अंतरिम रिसीवर नियुक्त किया जा सकता है।

(डी) कोई अन्य राहत जो वादी किसी या किसी प्रतिवादी के खिलाफ पाने का हकदा हो, जिसे अदालत देना उचित समझे।

(ई) (मई) लागत वादी को दी जा सकती है"

30 जुलाई 1949 को बनारसीदास ने अपना लिखित बयान दाखिल किया, लेकिन अन्य प्रतिवादियो मे से किसी ने भी बयान नही दिया। उपस्थित। 18 दिसंबर,1950 को रिसीवर की नियुक्ति के लिए किया गया एक आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया कि कांशीराम, जिन्हे लोहौर उच्च न्यायालय ने रिसीवर के रूप में नियुक्ति किया था। रिसीवर बने रहे। यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस मुकदमें के लंबित रहने के दौरान अपीलकर्ता बनारसीदास ने देवीचंद और काशीराम के साथ एक समझौता किया, जिसके तहत उन्होने 1 जुलाई, 1951 से शुरू होने वाली पांच साल की अवधि के लिए उक्त मिल मे उनके सभी अधिकारो और हितो को अनपे कब्जे मे ले लिया। 19 फरवरी1951 को उन्होने कांशीराम को 1 जुलाई, 1951 से शुरू होने वाली पांच साल की अवधि के लिए मिल का पटटा देने का निर्देश देने के लिए अदालत मे एक आवेदन

दाया किया। या उल्लेख किया जा सकता है कि पहले की व्यवस्था के तहत बनारसीदास ने समान अवधि के लिए एक पटटा प्राप्त किया था। जो 30 जून, 1951 को समाप्त होने वाला था। 26 अप्रैल, 1951 को एक श्रीमाथुर को अदालत द्वारा रिसीवर नियुक्त किया गया था, और जुलाई 1951 में उन्होने कुंदनलाल को पांच साल के लिए पटटा प्रदान किया था। कुछ शर्ते जो न्यायालय द्वारा तय की जाएगी। यहा यह उल्लेख करना उचित होगा कि कुंदनलाल द्वारा दायर मुकदमें मे मुद्दे 7 दिसंबर,1951 को तय किए गए थे, और महत्वपूणर् मुद्दो मे से एक यह था कि क्या 12 सितबंर, 1946 को बनारसीदास काे दिया गया पटटा शुरू से ही अमान्य था या रद्द करने योग्य था और किसी भी स्थिति में इसका प्रभाव क्या था। 2 अप्रेल, 1954 को, कुन्दनलाल की ओर से पेश वकील ने कहा किवह इस मुद्दे को दबाना नही चाहते है और केवल हिसाब-किताब लेने का प्रश्न बचा है। वादी की इस रियायत को ध्यान मे रखते हुए, न्यायालय ने निम्नलिखित शर्तो में मुकदमें का फैसला सुनायाः

"1 मुकदमा इस घोषणा के लिए डिक्री किया जाता है कि एस.गी.शुगर मिल्स, बिजनौर, 13 मई,1944 से भंग हो गई है, प्रतिवादी नंबर 1 सेठ बनारसीदास का 1/3 हिस्सा घोषित किया गया है। औरप्रतिवादीयों का 2 से 4 1/6 प्रत्येक।

2. सेठ कांशीराम को प्रर्दशनी 1 और 7 में संयुक्त भंडार और स्नेहक के संबंध में वादी और अन्य प्रतिवादियो को हिसाब देने के लिए उतरदायी ठहराया गया है।

3. श्री पी.एन.माथुर अगले तक रिसीवर बने रहेंगे।

4. और यह आदेश दिया गया है कि श्री काशी नाथ, जिन्हें इस मामले में मिलों के मामलो को बंद करने के उद्येश्य से आयुक्त नियुक्त किया गया है। उक्त मिलो से संबंधित क्रेडिट, संपतियो और प्रभावो और स्टाक का लेखा-जोखा तैयार करेगे। फिर रिपोर्ट कोर्ठ में जमा करे। रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने और आपतियो पर सुनवाई और

निर्णय के बाद, अदालत मिलो की संपति की बिक्री के लिए एक तारीख तय करेगी। आयुक्त को समय-समय पर न्यायालय से निर्देश प्राप्त होगे।

इस निर्णय के विरूद्ध उच्च न्यायालय में तीन अपीले दायर की गई। उक कांशीराम का, दुसरा बनारसीदास का और तीसरा मुन्नालाला का। यहा यह उल्लेख किया जा सकता है कि कांशीराम और मुन्नालाला दोनो के खिलाफ मुकदमें का एकपक्षीय फैसला सुनाया गया है। यह भी उद्येश्य किया जा सकता है कि अपील में भी साझेदारी व्यवसाय को बंद करने और इस उद्येश्य के लिए आयुक्त के रूप मेकं श्री कांश नाथ की नियुक्ति को अपील मे किसी भी पक्ष द्वारा चुनौती नही दी गई थी। इन अपीलों पर एक साथ सुनवाई की गई और 15 मार्च, 1958 को उच्च न्यायालय द्वारा एक सामान्य निर्णय द्वारा उनका निपटारा किया गया। उच्च न्यायालय ने, वास्तव में, बनारसीदास और मुन्नालाल की अपीलो को खरिज कर दिया, लेकिन कांशीराम की अपील को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया। उच्च न्यायालय के निर्णय के परिणामस्वरूप, कुंदनलाल का मुकदमा साझेदारी की घोषणा के लिए डिक्री हो गया।

13 मई, 1944 से इसे भंग कर दिया जाना चाहिए और जैसा कि टायल कोर्ट ने पाया,छह भाइयों के पास साझेदारी में शेयर थे। लेकिन अन्य राहतों के संबंध में मुकदमा खारिज कर दिया गया। चूंकि उच्च न्यायालय के समक्ष तीन अपीलें थीं, अपीलकर्ता बनारसीदास ने कानून की आवश्यकताओं के अनुपालन के लिए तीन अलग-अलग अपीलें की।

उच्च न्यायालय के समक्ष पार्टियों द्वारा अपानाया गया रुख यह थाः देवीचंद और मुन्नालाल चाहते थे कि समापन आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए जबकि कुंदनलाल चाहते थे कि इसे बरकरार रखा जाना चाहिए लेकिन उनसे कोई हिसाब देने के लिए नही कहा जाना चाहिए। कांशीराम ने दलील दी कि मुकदमा समय से बाधित

है और किसी भी कीमत पर उनसे हिसाब नही मांगा जाना चाहिए। अपीलाकर्ता बनारसीदास चाहते थे कि परिसमापन आदेश को बरकरार रखा जाना चाहिए और यह भी चाहते थे कि कुंदनलाल और कांशीराम दोनों द्वारा हिसाब-किताब दिया जाए। जिस आधार पर उच्च न्यायालय ने मुकदमें को खारिज कर दिया वह यह था कि खातों के लिए मुकदमा कला द्वारा वर्जित था। परिसीमा अधिनियम की धारा 106 हालाँकि, वादी की ओर से उच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया था कि यद्यपि खातों और मुनाफे के हिस्से के लिए एक वाद समय की रोक लग सकती है, लेकिन जहां तक यह विघटित फर्म की संपत्ति के वितरण से संबंधित है, यह मुकदमा था। परिसीमा से

वर्जित नहीं है क्योंकि ऐसा मुकदमा कला के अंतर्गत आता है।परिसीमा अधिनियम की धारा 106. इस तर्क को उच्च न्यायालय ने भी खारिज कर दिया और यह माना कि न केवल खातों और मुनाफे के लिए हिस्सेदार का दावा समय-बाधित था, बल्कि विघटित फर्म की संपत्ति के वितरण का दावा भी समय-बाधित था। उच्च न्यायालय इस तथ्य से अवगत था कि टायल कोर्ट में किसी भी प्रतिवादी द्वारा परिसीमा की याचिका नही ली गई थीं, लेकिन उसकी राय थी कि वादी ने स्वयं खुलासा किया था कि मुकदमा समय से बाधित था, इसलिए यह कर्तव्य थाएस के तहत न्यायालय के लिमिटेशन एक्ट की धारा 3 इसे खारिज करने के लिए है। इसके बाद वादी की ओर से उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई कि किसी भी अपील को प्राथमिकता नहीं दी गई।

इससे पहले अपीलकर्ताओं ने डिक्री के उस हिस्से पर सवाल उठाया था। जिसने वादी की साझेदारी की संपत्ति में एक हिस्सेदारी की राहत दी थी और इसलिए इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने ओ. 41, आर. का सहारा लिया। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 33 और यह माना गया कि इा प्रावधान के तहत, वह टायल कोर्ट द्वारा दिए गए दावे को अस्वीकार करने के लिए सक्षम था। इस

दृष्टिकोण पर, उच्च न्यायालय ने कांशीराम की अपील को स्वीकार कर लिया, लेकिन इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया कि अदालत में पडे धन के संबंध में भी यही आदेश दिया जाना था

अपनी अपील में, बनारसीदास ने तर्क दिया कि डिक्री के उस हिस्से को रद्द कर दिया जाला चाहिए जिसमें 13 मई, 1944 को साझेदारी को भंग करने की घोषणा की गई थी। लेकिन उच्च न्यायालय ने उन्हें इस बिंदु पर आग्रह करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया क्योंकि उन्होंने अपने लिखित बयान में स्वीकार किया था कि साझेदारी 13 मई, 1944 को समाप्त हो गई थी। उच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि अब तक बनारसीदास के खिलाफ जो डिक्री पारित की गई थी, इस राहत का संबंध एक सहमति डिक्री से है और इसकी अपील एस द्वारा वर्जित है। 96, उप-एस। (3), सिविल संहिता प्रक्रिया का। इस दृष्टिकोण पर, उच्च न्यायालय ने उनकी अपील खारिज कर दी।

मुन्नालाल के मामले से निपटते समय, उच्च न्यायालय ने पाया क उनके द्वारा मांगी गई एकमात्र राहत यह थी कि बनारसीदास को वर्ष 1914-1945 के लिए खाते प्रस्तुत करने के लिए कहा जाना चाहिए, और जैसा कि कांशीराम की अपील से निपटते समय पहले ही माना जा चुका था कि या दावा था समय बाधित होने के कारण उसकी अपील भी खारिज की जानीचाहिए

बनारसीदास तीनो अपीलों में उच्च न्यायालय के निर्णयों और डिक्री के खिलाफ अपील में आए है और उनकी अपील 1960 सिविल अपील संख्या 94 से 96 हैं। कुंदनलाल ने कांशी में उच्च न्यायालय के फैसले और डिक्री के खिलाफ अपील की है। काशी राम अपील, जो क्रमांकित है- की सिविल अपील सं. 97।1960 यह निर्णय इन सभी अपीलों को नियंत्रित करता है।

बनारसीदास की और से श्री वेद व्यास द्वारा उठाए गए बिंदु ये है कि-

(1) साझेदारी अधिनियम के तहत, साझेदार साझेदारी के व्यवसाय को समाप्त करने का हकदार है, भले ही कला के तहत खातो के लिए मुकदमा वर्जित है। परीसीमा अधिनियम की धारा 106।

(2) न्यायालय द्वारा रिसीवर नियुक्त किए जाने के बाद कांशीराम अन्य साझेदारो के साथ एक भरोसेमंद रिश्ते में खडे हो गए है जो संपति उनके कब्जे में थी, उसे सभी साझेदारो के लाभ के लिए उनक पास रखा हुआ माना जाना चाहिए। इसलिए, किसी भी अन्य विचार से स्वतंत्र, वह हिसाब-किताब देने के लिए बाध्य था।

(3) परिसीमा का प्रश्न वादपत्र या उच्च न्यायालय के समक्ष वाद या अपील के आधार में नही उठाया गया था और चूंकि यह तथ्य और कानून का मिश्रित प्रश्न है, इसलिए इसे उच्च न्यायालय के निर्णय का आधार नहीं बनाया जाना चाहिए था। यदि एस के प्रावधानों के मद्देनजर मुद्दे को उठाने की अनुमति देना आवश्यक समझा गया।परिसीमा अधिनियमके 3, अदालतो को कम और 41 आर. के प्रावधानों का पालन करना चाहिए था। 25, सिविल प्रक्रिया संहिता, और इस बिंदू पर एक मुद्दा तैयार किया और इसे ट्रायल कोर्ट को निष्कर्ष के लिए भेज दिया।

(4) 13 मई, 1944 को शुरू हुए मुकदमें के लिए उस सीमा को मानने में न्यायालय गलत था।

(5) उच्च न्यायालय ओ. 41, आर. 33, सिविल प्रक्रिया संहिता की के प्रावधानों का सहारा लेने में गलत था।

इससे पहले कि श्री वेद व्यास द्वारा उठाये गये बिन्दूओ पर विचार करे, हम उस पर ध्यान दिलाना चाहेंगे। पण्डित सलाहकार बहस की शुरुआत में, श्री वेद व्यास ने एक प्रस्ताव रखा कि यदि सभी पक्ष सहमत हों तो बनारसीदास कुंदनलाल और कांशीराम के

खिलाफ खातों के अपने दावे को माफ करने के लिए तैयार थे। बशर्ते की ट्रायल कोर्ट के फैसले को अन्य मामलों में बहार किये जाये। जबकि उन दोनों पक्षों की और से उपस्थित विद्वान वकील इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के इच्छुक थे। दो अन्य नहीं थे, और इसलिए, हमें उनकी योग्यता के आधार पर अपील पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ना चाहिए। विचार करने के लिए महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि क्या मुकदमा परिसीमा द्वारा वर्जित था। यदि इन अपीलों में अपीलकर्ता इस बिंदु पर सफल हो जाते हैं, तो पहले, दूसरे और पांचवें बिंदु वास्तव में विचार के लिए नहीं उठेगा।

वर्तमान मुकदमे में वादी कुंदनलाल ने पैरा 10 में आरोप लगाया कि सांझेदारी 13 मई, 1944 को समाप्त हो गई, जब शेओ प्रसाद ने उप न्यायाधीश, लाहौर की अदालत में 1944 का मुकदमा संख्या 105 दायर किया। इसमें कोई संदेह नहीं है। जैसा कि उच्च न्यायालय ने बताया बनारसीदास ने कम से कम तीन स्थानों पर अपने लिखित बयान में इस तथ्य को स्वीकार किया है। हालाँकि, यह स्वीकारोक्ति उसे केवल जहां तक तथ्यों का संबंध है, बाध्य करेगी, लेकिन जहाँ तक यह कानून के प्रश्न से संबंधित है, वहाँ तक नहीं है। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि सांझेदारी इच्छानुसार थी। फिर भी, श्री वेद व्यास बताते हैं, ऐसे साझेदारी के विघटन के लिए केवल मुकदमा दायर करना सांझेदार के विघटन के लिए नोटिस के समान नहीं है। इस संबंध में वह 68, कॉर्पस ज्यूरिस सेकंडम, पृष्ठ 929 पर निर्भर करता है। वहाँ कानून इस प्रकार कहा गया हैः केवल यह तथ्य कि एक पार्टी विघटन के लिए अदालत में जाती है, फिर वह बताते है कि ओ. 20 आर. 15 के तहत सिविल प्रक्रिया संहिता डिक्री में बताई गई तारीख से सांझेदारी भंग हो जायेगी और चूंकि लाहौर मुकदमा डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दिया गया था और उसमें कभी भी डिक्री पारित नहीं की गई थी, इसलिए यह कहना भी गलत होगा कि साझेदारी बिल्कुल समाप्त हो गई। मुकदमें की संस्था के कारण । वही, कुछ की और से इसका विरोध किया गया।

उत्तरदाताओं केका कहना है कि साझेदारी इच्छानुसार एक होने के कारण, इसे उस तारीख से भंग माना जाना चाहिए जिस दिन विघटन के लिए मुकदमा शुरू किया गया था और इस संबंध में उप-धाराओं के प्रावधानों का संदर्भ दिया गया था। (1) एस. साझेदारी अधिनियम की धार 43 जो इस प्रकार हैः

"(1) जहाँ साझेदारी इच्छानुसार है, वहाँ किसी भी भागीदार द्वारा फर्म को भंग करने के अपने अरादे के बारे में अन्य सभी भागीदारो को लिखित रूप में नोटिस देकर फर्म को भंग किया जा सकता है।

यह तर्क संयुक्त हिंदू पारिवारिक संपत्ति के विभाजन के मुकदमों के सादृश्यता पर आधारित प्रतीत होता है, जिसके संबंध में यह स्थापित कानून है कि यदि सभी पक्ष बालिग है, तो विभाजन के लिए मुकदमा दायर करने के परिणामस्वरूप संबंध विच्छेद हो जाएगा। परिवार के सदस्यों की संयुक्त स्थिति, हालांकि यह सादृश्य जागू नही हो सकता, क्योंकि, किसी फर्म की संपत्ति पर उसके साझेदारो के अधिकार संयुक्त हिंदू परिवार के सदस्यों को भिन्न चरित्र के होमे है। जबकि एक संयुक्त हिंदू परिवार के सदस्य पारिवारिक संपत्ति में अविभाजित हित रखते है, एक फर्म के साझेदार केवल किरायेदार के रूप में हित रखते है। अब विभाजन के मुकदमे की स्थापना के परिणामस्वरूप, आम तौर पर संयुक्त स्थिति को विच्छेदित माना जाता है, लेकिन फिर, उस समय से वे संपत्ति को किरायेदारों के रूप में रखते हैं, यानी उनके अधिकार अब कुछ हद तक होंगे। किसी फर्म के साझेदारो के समान। अपनी इच्छानुसार किसी साझेदारी में, यदि कोई साझेदार अपना विघटन चाहता है, तोवह चाहता है कि फर्म को समाप्त हा जाए, कि उसे फर्म की परिसंपत्तियाँ में उसका व्यक्तिगत हिस्सा दिया जाए(या यह हो सकता है कि) उसे फर्म के व्यवसाय के संबंध मे कियी भी दायित्व से मुक्त किया जाना चाहिए, इसके अलावा हिसाब- किताब लेने के बाद उससे जो बकाया पाया

जा सकता है) और फर्म का अस्तित्व अब समाप्त हो जाना चाहिए। वह उप-एस में दिए गए अनुसार नोटिसदेकर फर्म के विघटन का आह्वान कर सकता है। (1) एस.43 यानी, के हस्तक्षेप के बिना अदालत, लेकिन अगर वह ऐसा करने का विकल्प नहीं चुनता है और फर्म के विघटन को प्रभावीत करने के लिए आदालत में जाना चाहता हैं, तो निस्संदेह, और. 20, आर. में निर्धारित प्रक्रिया से बाध्य होगा। 15 , सिविल प्रक्रिया संहिता का , जो इस प्रकार हैः

> "जहाँ एक मुकदमा साझेदारी के विघटन या साझेदारी खातो को लेने के लिए है तो अदालत, अंतिम डिक्री पारित करने से पहले, पार्टियो के आनुनातिक हिस्से की घोषणा करत हुए एक प्रारभिक डिक्री पारित कर सकती है,जिस दिन वह दिन तय कर सकती है। साझेदारी विघटत हो जाएगी या विघटित मानी जाएगी, और ऐसे खातो को लेने और अन्य कार्य करने का निर्देश देगा, जैसा उचित समझे।"

यह नियम स्थिति स्पष्ट करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह नियम सामान्य रूप से लागू होता है, यानी इच्छानुसार साझेदारियो के साथ-साथ इच्छा के अलावा अन्य साझेदारियो पर भीः लेकिन इस प्रावधान में ऐसी कोई सीमा नहीं हैं जो इसके संचालन को इच्छानुसार साझेदारियो के अलावा अन्य साझेदारियो तक ही सीमित रखे। उप-धारा (1) साझेदारी अधिनियम के धारा 43 मे यह नही बताया गया है कि वह कौन सी तारीख होगी जिससे फर्म को भंग माना जाएगा। यह पता लगाने के लिए हमें उप-एस पर जाना होगा। (2) जो इस प्रकार पढता हैः

> "फर्म को नोटिस में उल्लिखित तिथि से विघटन की तारीख के रूप में भंग कर दिया जाता है, या यदि कोई तारीख का उल्लेख नही किया गया है,तो नोटिस के संचार की तारीख से"

अब यह स्पष्ट हो जाएगा कि प्रावधान उस तारीख का उल्लेख करने पर विचार करता है जिससे फर्म विघटित हो जाएगी। साझेदारी के विघटन के मुकदमे में ऐसी तारीख का उल्लेख करना पूरी तरह से विदेशी होगा और इसलिए ऐसा वाद उप-धारा में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "नोटिस" के अतंर्गत नही आ सकता है। इसलिए यह अस बात का अनुसारण करेगा कि विघटन के मुकदमें में एक वादपत्र की प्रति के साथ समन की तामील की तारीख साझेदारी को साझेदारी के विघटन की तारीख नहीं माना जा सकता है। 43 कोई सहायता नहीं है।

हालाँकि, यह मानते हुए कि प्रावधान में "नोटिस" शब्द को इतना व्यापक है कि इसमें साझेदारी के विघटन के मुकदमे में दायर वाद को शामिल किया जा सकता है, उप-धारा में ही यह प्वधान है कि फर्म को विघटित माना जाएगा। संचार की तारीख की सूचना इसलिए, यह माना जाएगा कि जब प्रतिवादी को,जहा केवल एक प्रतिवादी है, और सभी प्रतिवादी को, जब कोई प्रतिवादी हो, तो वादपत्र की एक प्रति के साथसमन भेजे जाने पर साझेदारी को भंग माना जाएगा। चूँकि किसी साझेदारी को केवल एक तारीख से ही भंग माना जाएगा, इसलिए विघटन की तारीख वही मानी जाएगी। लिस दिन आखिरी सम्मन भेजा गया था। अब यदि हाईकार्ट एस के प्रावधानों का लाभ देना चाहता है। 43 इसके समक्ष किसी भी पक्ष-प्रतिवादी को, उन प्रावधानोके पूर्ण निहितार्थो को ध्यान में रखना चाहिए था। इस मामले में आखिरी समन किस तारीख को भेजा गया था, यह सुनिश्चित करने के लिए हमारे पास रिकार्ॅड पर कोई सामग्री नही है। चूकि वहतारीख ज्ञात नही है या उच्च न्यायालय को ज्ञात हो सकती थी, इसलिए यह मानना गलत था कि मुकदमा समय से बाधित था।

उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया है कि कांशीराम की ओर से उसके समक्ष संबोधित तर्क पर भी सीमा का प्रश्न था। यह विशुद्ध रूप से कानून का

प्रश्न नहीं था, बल्कि तथ्य और कानून का एक मिश्रित प्रश्न था और इसलिए, इसे पहली बार बहस में उठाने की अनुमति देना उचित नही था। हम इस बात से संतुष्ट हैं कि उच्च न्यायालय ने जो किया है, उससे मुकदमे के कुछ पक्षों पर प्रतिकुल प्रभाव पडा है और केवल इसी आधार पर, उसके फैसले को रद्द करना हमारे लिए उचित होगा। सदि उच्च न्यायालय एस के प्रावधानों से अभिभूत महसूस करता है। लिमिठेशन एक्ट के 3 में कम से कम उन पार्टियो को मौका देना चाहिए था जिन्होंने इसका समर्थन किया था। उनकी दलीलो में संशोधन करके परिसीमा की दलील को पूरा करने के लिए टायल कोर्ट का फैसला। दलीलो में संशोधन की अनुमति देने के बाद, उच्च न्यायालय को एक मुद्दा तैयार करना चाहिए था और इसे टायल कार्ट को निष्कर्ष के लिए भेजना चाहिए था। ऐसा करने के बजाय, इसने प्रतिवादियों में से एक की दलील को न केवल तथ्य के सवाल पर बल्कि कानून के सवाल पर भी निर्णायक मानना और मुकदमे को खारिज कर दिया । यह बहुत संभव है कि यदि प्रतिवादियों को एक अवसर दिया गया होता, तो वे उन तारीखो को साबित करने के अलावा, जिन पर समन की तामील किया गया था, यह स्थापित कर सकते थे कि मुकदमें के दौरान पावती के कारण समय की बाधा नहीं थी। चर्चा में उच्च न्यायालय ने कहा था कि उसके समक्ष किसी ने यह सुझाव नहीं दिया था कि दावा स्वीकारोक्ति के कारण वर्जित नहीं किया गया था। जाहिरा तौर पर वादी और प्रतिवादी बनारसीदास की ओर से उसके समक्ष ऐसें कोई तर्क नहीं दिया गया था, क्योंकि वकील स्पष्ट रूप से आश्चर्यचकित थे और उनके पास मामले के इस पहलू पर निर्देश प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं था। हमारी स्पष्ट राय है कि उच्च न्यायालय ने विशेष रूप से उन प्रतिवादियों को जिन्होंने मामले में कोई लिखित बयान भी दाखिल नहीं किया था, अपने समक्ष सीमा की याचिका उठाने की अनुमति देकर गलती की थी। हमे नहीं लगता कि मुकदमें मे किसी गैर प्रतिद्वंदी पक्ष को एक बिल्कुल नया मुद्दा उठाने की अनुमति देने का यह उपर्युक्त मामला था।

इस बिन्दू पर हमने निर्णय को देखते हुए यह होगा कि उच्च न्यायालय के फैसले को रद्द किया जाना चाहिए और ट्रायल कोर्ट के फैसले को बहाल किया जाना चाहिए। हालांकि हम यह उल्लेख कर सकते है कि अपीलकर्ता बनारसीदास वादी और प्रतिवादी कुंदलाल के साथ-साथ प्रतिवादी-प्रतिवादी काशीराम सहित कुछ पक्ष डिक्री में कुछ बदलावों के लिए सहमत थे लेकिन चूंकि इनके अलावा अन्य पक्ष भी थे जिन्हे यह भिन्नतः स्वीकार्य नहीं है। हम गुण, दोष के आधार पर अपीलों पर निर्णय देने के लिए बाध्य है। उपरोक्त कारणों से हम बनारसीदास और कुंदलाल की अपील स्वीकार करते है और मुकदमें की डिक्री बहाल करते है। अपीलों के साथ हमने दो सिविल विधिक याचिकाएं संख्या 1482 वर्ष 1962 और 1534 वर्ष 1962 सुनी। पहला इस आशय का है कि इन अपीलों के लंबित रहने के दौरान इस न्यायालय द्वारा दिये गये पट्टे को शीघ्र समाप्त किया जाना चाहिए। ऐसा कहा जाता है कि पांच वर्ष की अवधि निश्चित करने का कारण यह था कि यह न्यायालय मुकदमेबाजी से व्यस्त था और इसके पांच वर्ष तक चलने की आशा थी, लेकिन जैसा कि होता है, यह लगभग डेढ साल के भीतर समाप्त हो गया है। इसलिए पट्टे को जारी रखने का कोई कारण नहीं है। इस तथ्य के अलावा कि इसकी समाप्ती से पहले पहले पट्टा निर्धारित करना पार्टीयो के हित में नहीं होगा, हमें संदेह है कि क्या हम कानूनी रूप से ऐसा कर सकते हैं। इसलिए हम इस आवेदन को अस्वीकार करते हैं। जहाँ अन्य आवेदन का संबंध है पार्टीयों के बीच इस बात पर सहमति है कि संपत्तियाँ वितरित होने पर रिसिवर द्वारा इस पर विचार किया जाना चाहिए।

हम यह भी उल्लेख कर सकते हैं कि बहस के दौरान बनारसीदास की ओर से हमारे सामने कहा गया था कि उन्होंने मील को कुशलता से चलाने के लिए कुछ नई मशीनरी स्थापित की थी और मील को बेचने से पहले उन्हें मशीनरी हटाने की अनुमति दी जानी चाहिए। यह सुझाव दिया गया है कि शायद यह सभी पक्षों के हित में होगा।

यदि मिल की बिक्री की तारीख पर नईमशीनरी के साथ बेचा जायेगा। हालाँकि, अन्य पक्षों ने कहा कि यह सबसे अच्छा होगा, यदि बनारसीदास पट्टे की समाप्ति से पहले मशीनरी हटा ले, ऐसी स्थिति में हम इस मामले में कोई निर्देश नहीं दे सकते है। हालांकि पार्टीयों के लिए यह खुला होगा कि जब रिसिवर मशीनरी बेचने के बारे में सोचे तो अपनाई जाने वाली प्रक्रिया पर सहमत हो या यदि वे सहमत नहीं है तो उच्च न्यायालय से निर्देश प्राप्त कर सकते है।

हालांकि हम सिविल विधिक याचिकाये खारिज कर देते है। लेकिन हम लागत के बारे में कोई आदेश नहीं देते हैं।

अपील की अनुमति

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक दीप्ति स्वामी (न्यायिक अधिकारी) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः - यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिये स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।